|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 13: क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग

3/3 (श्लोक 23-34), शनिवार, 24 मई 2025

विवेचक: गीताव्रती श्रीमती श्रुति जी नायक

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/iquOWspU8h0

पुरुष तथा प्रकृति का सामञ्जस्य

आज के सत्र का शुभारम्भ मधुराष्टकं, सद्गुण प्राप्ति की प्रार्थना, परम पूज्य गुरुजी की वाणी में आदिशङ्कराचार्य द्वारा रचित श्रीकृष्णाष्टकम् एवम् श्रीहनुमान चालीसा के पठन एवम् दीप प्रज्वलन के साथ हुआ।

सर्व प्रथम परमपूज्य स्वामी गोविन्ददेवगिरि जी महाराज तथा गीतामाता के महात्म्य की वन्दना करते हुए पिछले सत्रों का पुनः स्मरण किया गया।

श्रीभगवान् की हम पर कृपा है कि हम श्रीमद्भगवद्गीता सीख रहे हैं और श्लोकों के अर्थ को भी समझने का प्रयास कर रहे हैं।

हमारा ध्येय वाक्य है **"गीता पढ़ें पढ़ायें, जीवन में लायें।"** उसके अनुसार हम गीता पढ़ तो रहे हैं किन्तु उसे जीवन में लाने हेतु गीता के श्लोकों के अर्थ को समझना आवश्यक है जब हम अर्थ को समझेंगे तभी अपनी दिनचर्या में भी ला सकेंगे और यह स्वयं ही हमारे जीवन में प्रतिबिम्बित होगी।

हमने अभी तक क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के बारे में पढ़ा। यह अत्यन्त ही ज्ञानपूर्ण अध्याय है। हमने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के लक्षणों को देखा। क्षेत्रज्ञ के स्वरूप को देखा - उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता- ये सब क्षेत्रज्ञ के स्वरूप है। अब आगे देखते हैं।

13.23

य एवं(म्) वेत्ति पुरुषं(म्), प्रकृतिं(ञ्) च गुणैः(स्) सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि, न स भूयोऽभिजायते॥13.23॥

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य (अलग-अलग) जानता है, वह सब तरह का बर्ताव करता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता।

विवेचन- ये सारा संसार विकारयुक्त, जड़ और अनित्य है। जीवात्मा नित्य, शुद्ध, निर्विकार, चैतन्य तथा अविनाशी है।

अनित्य, विकारी संसार और नित्य, निर्विकार परमात्म तत्त्व इन दोनों में हम किस को पाना चाहेंगे?

हम सभी अविनाशी एवम् निरन्तर परमात्मा को ही प्राप्त करना चाहते हैं।
पुरुष अर्थात् क्षेत्रज्ञ परमात्मा का अभिन्न स्वरूप है किन्तु प्रकृति के साथ वह भिन्न दिखायी देता है। परमात्मा नित्य, अविनाशी तथा शुद्ध है तथा प्रकृति से अतीत है। इस सत्य को बिना किसी शङ्का के जो भक्त जान जायेंगे, वे ही ईश्वर के साथ एकाकार हो पायेंगे।

इसी प्रकार प्रकृति के क्या लक्षण हैं?
कार्य और करण इसका हेतु ही प्रकृति है। यह हम पहले भी देख चुके हैं। जो भी घटना घटती है, वह प्रकृति के द्वारा ही घटती है।

तीनों गुणों के समन्वय से बनी प्रकृति का ही विस्तार हमें विश्व में दिखाई देता है। प्रकृति नाशयुक्त, जड़ तथा अनित्य है। प्रकृति तथा पुरुष के अन्तर को जो व्यक्ति जान जाते हैं वे ही ज्ञानी हैं ।

उदाहणार्थ हमें खिचड़ी बनाने हेतु दाल और चावल की आवश्यकता है। यदि दाल और चावल को मिलाने के बाद हमें इन्हें अलग करना हो तो हम इन्हें अलग कर पायेंगे क्योंकि हमें इसका ज्ञान है।

ऐसे ही ज्ञानी व्यक्ति भी जानते हैं कि पुरुष क्या है तथा प्रकृति क्या है?
ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है। प्रकृति तथा पुरुष के अन्तर को जानने वाले व्यक्ति जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जायेंगे।

क्या मोक्ष प्राप्ति का यही एक साधन है? इसका उत्तर अगले श्लोक में श्रीभगवान् देते हैं।

13.24

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति, केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन, कर्मयोगेन चापरे॥13.24॥

कई मनुष्य ध्यानयोग के द्वारा, कई सांख्य योग के द्वारा और कई कर्मयोग के द्वारा अपने-आप से अपने-आप में परमात्मतत्त्व का अनुभव करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् बताते हैं कि कई मनुष्य ज्ञान योग के द्वारा, कई मनुष्य साङ्ख्य योग के द्वारा तथा कई कर्म योग के द्वारा उत्पन्न तत्त्व को प्राप्त करते हैं।

जैसे जीवन यापन हेतु हम कृषि करते हैं अथवा व्यापार करते हैं अथवा नौकरी करते हैं इसी प्रकार इस परमतत्त्व को हम कैसे जान सकते हैं।

हमने छठवें अध्याय में **ध्यानयोग** के बारे में पढ़ा।
एकान्त में बैठकर अपने मन को एकाग्रचित्त करना ध्यान कहलाता है। ध्यान में एकाग्रचित्त की प्रधानता है। एकान्त में रहकर अन्तर्मुख होकर ज्ञानी व्यक्ति परमतत्त्व को प्राप्त करते हैं।

साङ्ख्य योग में विवेकपूर्ण चित्त से सत्-असत् की साधना करते हैं। चार प्रकार की साधना के द्वारा वे परमतत्त्व को प्राप्त कर लेते हैं। इसे **चतुष्टय** कहते हैं- विवेक, वैराग्य, षट्सम्पति तथा मुमुक्षत्व।

विवेक का अर्थ है- सत्-असत्, नित्य-अनित्य सबको जान लेना।

वैराग्य- ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात व्यक्ति वैराग्य को धारण कर लेता है।

षट्सम्पत्ति- षट्सम्पत्ति में शम अर्थात् मन पर नियन्त्रण।

दम अर्थात् इन्द्रियों पर नियन्त्रण ।

उपरति अर्थात् इन्द्रियों तथा मन के विषयों से ऊपर उठ जाना।

तितिक्षा- द्वन्द्व को सहन करना । सुख-दुख,मान-अपमान सबको समान समझना।

श्रद्धा- आत्मतत्त्व पर दृढ़ विश्वास रखना ।

समाधान- वेदों का अध्ययन तथा पुराणों में लिखी कथाओं के अनुसार उनका दर्शन करना। उनके बारे में निरन्तर ज्ञान अर्जित करना । मन तथा बुद्धि एक साथ परमात्मा में स्थित होना ।

जब द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को शिक्षा के अन्तर्गत लक्ष्य भेदना सिखा रहे थे तब अर्जुन की एकाग्रचित्तता के बारे में हम सबने सुना है। उन्हें पक्षी की गर्दन ही दिखाई देती थी।
साङ्ख्ययोगियों को भी इसी प्रकार मात्र ईश्वर ही दिखाई देते हैं।

मुमुक्षत्व- षट्सम्पत्ति को प्राप्त करने के बाद ज्ञानियों को ईश्वर के अलावा और कुछ भी दिखायी नहीं देता है। इस अवस्था को मुमुक्षत्व कहते हैं।

कर्मयोगी- सकाम कर्म करने वाले तथा कर्मयोगी दोनों प्रकार के व्यक्ति एक ही कार्य को करते हैं किन्तु सकाम कर्मयोगी फल की अपेक्षा रखते हैं जबकि कर्मयोगी ध्यान अथवा साङ्ख्य से ज्यादा कर्म में अपनी इच्छा दिखाते हैं।

कर्मयोगी अपने शरीर को राष्ट्र अथवा समाज की सेवा में अर्पित कर देते हैं। ध्यान अथवा् साङ्ख्य में अपना मन लगाने के स्थान पर वे सत्कार्यों में अपना मन तथा देह लगाने में रुचि रखते हैं। वे जो भी कर्म करते हैं वे फल की आशा से मुक्त तथा लोककल्याण के लिये होते हैं। वे सभी कार्यों को अपना कर्तव्य समझकर ईश्वर को समर्पित करते हुये करते हैं। इसीलिये वे इन कर्मों के बन्धनों से बँधते नहीं है और ये **परमतत्त्व** को प्राप्त कर लेते हैं।

हम जैसे साधारण व्यक्ति ध्यानयोग बहुत अधिक नहीं कर सकते हैं।साङ्ख्ययोग भी सभी नहीं कर सकते हैं।

कर्म तो सभी करते हैं किन्तु क्या वे कर्म लोक कल्याण अथवा निस्वार्थ भाव से किये हुये हैं? यह देखना पड़ेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि अन्य लोग परमात्मा को कैसे पा सकते हैं? इसके लिये श्रीभगवान् ने सुन्दर बात बतायी है।

13.25

अन्ये त्वेवमजानन्तः(श्), श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव, मृत्युं(म्) श्रुतिपरायणाः॥13.25॥

दूसरे मनुष्य इस प्रकार (ध्यानयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, आदि साधनों को) नहीं जानते, पर दूसरों से (जीवन्मुक्त महापुरुषों से) सुनकर उपासना करते हैं, ऐसे वे सुनने के अनुसार आचरण करने वाले मनुष्य भी मृत्यु को तर जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् ने बहुत सुन्दर उपाय बतलाया है- श्रुति परायण बनने हेतु ।

श्रुति परायण का अर्थ है- विद्वानों के द्वारा, सन्तों के द्वारा अथवा स्वामीजी के द्वारा जो भी कथायें बतायी जाती हैं उनका निरन्तर

श्रवण होना चाहिये। रामायण, महाभारत, वेद और उपनिषदों का निरनतर पठन करना चाहिए।

हम मन्दबुद्धि हैं। हम स्वयं परमात्मा के परमतत्त्व को नहीं समझ सकते हैं। ध्यान, साङ्ख्य अथवा् कर्मयोग के द्वारा परमतत्त्व की प्राप्ति यदि सम्भव न हो तो तत्त्व ज्ञानी, महापुरुषों के शरण जाकर हम उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान से उपासना सकते हैं। इसके लिये हमें श्रुति परायण होना चाहिये, निरन्तर श्रवण करना।

स्वामी जी स्वयं कहते हैं कि सम्भव हो तो पूर्ण अथवा न हो तो एक अध्याय का नित्य वाचन होना चाहिये। अपने धर्म ग्रन्थों को भी समझने का प्रयास करना चाहिये।

स्वामी जी कहते हैं निरन्तर कथाओं का श्रवण करते रहो। इन सबका अन्त है परमात्म तत्त्व को जानना।

तत्त्वज्ञानी द्वारा दिये जाने वाले प्रवचनों को अवश्य सुनना चाहिये।

स्वामी जी कहते हैं कि कभी कभी एक फीट ऊपर से तो कभी पाँच फीट ऊपर से ज्ञान की बातें निकल जाती हैं, किन्तु सुनते रहने से परमात्मा का ज्ञान तो होता ही है। परमात्मा के बारे में सोचना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आरम्भ में समझ आता है किन्तु धीरे-धीरे प्रवाह छूटता जाता है किन्तु वहीं रहो व सुनो। भगवत् कथा अथवा श्रीमद्भगवद्गीता को पढ़ने का ध्येय है ईश्वर को जानना। हमें बाकी विषय समझ में आये अथवा न आये किन्तु हम परमात्मा को जानते हैं तो उनका ध्यान एवम् चिन्तन कर सकते हैं। वहीं बैठे-बैठे हम श्रीभगवान् के बारे में सोच सकते हैं तथा उनका ध्यान कर सकते हैं, इसीलिये श्रुतिपरायण होना अति आवश्यक है। जब हम श्रद्धा से स्वयं श्रुति परायण बनते हैं तब हम मन लगाकर निरन्तर अच्छी कथाओं का श्रवण स्वयं करते हैं तब अन्त समय परमात्मा स्वयं आकर हमें लेकर जाते है तथा हमें पुनर्जन्म की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

13.26

यावत्सञ्जायते किञ्चित्, सत्त्वं(म्) स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्, तद्विद्धि भरतर्षभ॥13.26॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! स्थावर और जंगम जितने भी प्राणी पैदा होते हैं, उनको (तुम) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से (उत्पन्न हुए) समझो।

विवेचन- हे भरतवंशी अर्जुन! स्थावर तथा जङ्गम जितने भी प्राणी उत्पन्न होते हैं उन्हें तुम क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न हुआ समझो ।

स्थावर का अर्थ है अचर जैसे- वृक्ष, लता।
जङ्गम का अर्थ है चर जैसे- प्राणी।

चर हो अथवा अचर हो ये सभी पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से उत्पन्न हुये हैं।

क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। हमें शरीर दिखायी देते हैं। अनेक प्राणी हमें दिखायी देते हैं।

जरायुज
अण्डज
स्वेदज
उद्भिज

किन्तु इन सबका तत्त्व है पुरुष अर्थात् क्षेत्रज्ञ।

13.27

समं(म्) सर्वेषु भूतेषु, तिष्ठन्तं(म्) परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं(म्), यः(फ्) पश्यति स पश्यति ॥13.27॥

जो नष्ट होते हुए सम्पूर्ण प्राणियों में परमेश्वर को नाश रहित (और) समरूप से स्थित देखता है, वही (वास्तव में सही) देखता है।

7विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति नष्ट होते हुये प्राणियों में परमात्मा को नाशरहित तथा समरूप से देखता हे अर्थात् नाशवान प्राणियों में अविनाशी तत्त्व परमात्मा है। उस तत्त्व को सभी के मध्य विराजमान केवल ज्ञानी व्यक्ति ही देख पाते हैं। सभी प्राणियों में विद्यमान तत्त्व परमात्मा हैं जो चैतन्य हैं। वह सभी में समान हैं। परमात्मा निर्विकार हैं जबकि विकार परिवर्तनशील है। शरीर विनाशी है जबकि उसके भीतर विद्यमान परमात्म तत्त्व अविनाशी हैं। इस सत्य को ज्ञानियों ने जान लिया है।

जैसे हमें आभूषण अच्छे लगते हैं। गृहिणियों को कुछ अधिक ही रुचि होती है अनेक प्रकार के आभूषणों की। अभी स्वर्णधातु का मूल्य आकाश तक पहुँच गया है तो जब हम आभूषण लेने हेतु दुकान पर जाते हैं तो चयन के पश्चात हमें पता चलता है कि इसका मूल्य बहुत अधिक है तब हम दुकानदार से कहते हैं कि इसका मूल्य हमारी सीमा के बाहर है। अब दुकानदार हमें पुराने आभूषणों के बदले में नये आभूषण लेने का परामर्श देता है।

यहाँ हम आभूषण की बनावट देखते हैं किन्तु स्वर्णकार के लिये तो नवीन हो अथवा पुराना वह मात्र धातु है। यह उनका व्यापार है। वे मात्र स्वर्ण को देखते हैं तथा विपणन रणनिति (Marketing strategy) को देखते हैं, इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति भी समभाव से प्रत्येक प्राणी में परमात्म तत्त्व को ही देखते हैं।

13.28

समं(म्) पश्यन्हि सर्वत्र, समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं(न्), ततो याति परां(ङ्) गतिम्॥13.28॥

क्योंकि सब जगह समरूप से स्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला मनुष्य अपने-आप से अपनी हिंसा नहीं करता, इसलिये (वह) परमगति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- सभी स्थानों पर समरूप से स्थित ईश्वर को समान देखते हुये ज्ञानी पुरुष स्वयं को हानि नहीं पहुँचाता है। वह व्यक्ति जानता है कि सब में यही परमात्मा स्थित हैं। इसीलिए तो वह आत्मघात कभी नहीं करता है।
मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है इसीलिये मनुष्य जन्म में ही इस परमतत्त्व को जानने का प्रयास करना चाहिये किन्तु प्रयास करके भी हम उस भगवद् तत्त्व को जान पायेंगे क्या?

यह तो ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। वे जिस पर कृपा करेंगे वही उन्हें समझ सकेगा।

सातवें अध्याय में श्रीभगवान् ने बताया है कि वे चार प्रकार के व्यक्ति जो मुझे भजते है- **अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु व ज्ञानी।**

ज्ञानी वे ही हैं जिन्हें परमतत्त्व प्राप्त हुआ है।

अर्थार्थी का अर्थ है कामना करते हैं किन्तु परमात्मा की कृपा से भोगों अथवा् इच्छाओं की पूर्णता चाहते हैं।

आर्त्त का अर्थ है जो दुःख में ईश्वर का ध्यान करे। जैसे द्रौपदी ने वस्त्रहरण के समय उसके ज्येष्ठ, पति सभी के होते हुये भी

सहायता के लिए श्रीकृष्ण को स्मरण किया।

जिज्ञासु- जो परमतत्त्व को जानने की इच्छा रखता है।

इन तीनों भक्तों के कई जन्म जाते होंगे तब वे ईश्वर को प्राप्त कर पाते होंगे। इसके लिये भगवद् कृपा की आवश्यकता है।

प्रकृति हमें हमारे कर्मों के फल देती है। उसी के अनुसार हम स्वभाव पा लेते हैं। चौदहवें तथा सत्रहवें अध्याय में भी हमने देखा कि कर्मों के फलस्वरूप ही स्वभाव व फल मिलता है किन्तु ज्ञान प्राप्त करते-करते हम ईश्वर की शरण में जा सकते हैं। जब ईश्वर हम पर कृपा करेंगे तभी हम ज्ञान के स्तर को प्राप्त कर सकेंगे। अतः मनुष्य जन्म का पूर्ण लाभ उठाने हेतु आत्मोद्धार करना है। बाकि जन्मों में हम यह नहीं कर सकते।

यदि हम इसका प्रयास नहीं करते हैं तो हम आत्मघाती बन जाते है अतः हमें अपने उद्धार के लिये अच्छे पथ पर चलना चाहिये।

13.29

प्रकृत्यैव च कर्माणि, क्रियमाणानि सर्वशः।
यः (फ्) पश्यति तथात्मानम्, अकर्तारं (म्) स पश्यति॥13.29॥

जो सम्पूर्ण क्रियाओं को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही की जाती हुई देखता है और अपने आपको अकर्ता देखता (अनुभव करता) है, वही (यथार्थ) देखता है

विवेचन- जो सम्पूर्ण क्रियाओं को सब प्रकार से प्रकृति द्वारा ही होता हुआ देखता है तथा स्वयं को अकर्त्ता मानता है वही यथार्थ देखता है।

ज्ञानी व्यक्ति सदैव अच्छा कार्य ही करते हैं किन्तु वे इसे प्रकृति के द्वारा किया गया मानते हैं। वे स्वयं को निमित्त मात्र ही समझते हैं। वे स्वयं को अकर्त्ता मानते हैं।

जैसे आकाश में मेघ रहते हैं। वे चलायमान होते हैं किन्तु आकाश स्थिर है इसी प्रकार से प्राणियों में ईश्वर स्थिर है। प्रकृति कार्य करती है किन्तु परमात्मा स्थिर है।

हम स्टेशन पर देखते हैं कि हम एक रेलगाड़ी में बैठे हैं और दूसरी पटरी पर एक और रेलगाड़ी गति में है तो हमें हमारी रेलगाड़ी ही चलायमान प्रतीत होती है। इसी प्रकार से प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से बने शरीर के द्वारा जब कार्य करते हैं तो परमात्मा वहाँ स्थिर रहते हैं तथा प्रकृति कार्य करती है।

13.30

यदा भूतपृथग्भावम्, एकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं (म्), ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥13.30॥

जिस काल में (साधक) प्राणियों के अलग-अलग भावों को एक प्रकृति में ही स्थित देखता है और उस प्रकृति से ही (उन सबका) विस्तार (देखता है), उस काल में (वह) ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- विभिन्न प्राणियों में प्रकृति का एक भाव स्थित होता है। सभी के अपने-अपने कार्य हैं जिन्हें वे सम्पादित करते हैं। इनमें मनुष्य योनि उच्चतम मानी जाती है तथा अन्य सभी नीच किन्तु ये सभी प्रकृति में अपने-अपने स्थान पर कार्य करते हैं तथा ऐसे ही इनका विस्तार होता है। जिसने इसे समझ लिया वह ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।
चेतना के बिना कोई प्राणी कार्य नहीं कर सकता है। मृत्यु के पश्चात् यही चेतना शरीर से निकल जाती है तथा हम कुछ नहीं कर

पाते हैं।

प्रकृति तथा चेतना के संयोग से ही समस्त कार्य होते हैं। इस बात को हमें अच्छे से समझना होगा। प्रकृति व्यक्तिगत रूप से कुछ नहीं होती है तथा परमात्म तत्त्व भी प्रकृति के संयोग से ही कार्य करता है। प्रकृति के सङ्ग से ही अगणित विकारों के बाद भी परमात्मा सबका लालन-पालन तथा भरण-पोषण करते हैं तथापि वह स्वयं असङ्ग हैं।

13.31

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्, परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय, न करोति न लिप्यते॥13.31॥

हे कुन्तीनन्दन ! यह (पुरुष स्वयं) अनादि होने से (और) गुणों से रहित होने से अविनाशी परमात्मस्वरुप ही है। यह शरीर में रहता हुआ भी न करता है (और) न लिप्त होता है।

विवेचन- हे अर्जुन! पुरुष तथा प्रकृति दोनों ही अनादि हैं।
जैसे एक प्रश्न है कि मुर्गी पहले आयी या अण्डा? इसी प्रश्न के उत्तर में कुछ लोग मुर्गी तथा कुछ अण्डा बताते हैं किन्तु वास्तविकता में दोनों एक साथ आये हैं। इसी प्रकार पुरुष तथा प्रकृति दोनों अनादि हैं तथा इनके संयोग से ही सृष्टि कार्य करती है।

पुरुष निर्गुण, अविनाशी तथा अनादि है इसीलिए वह शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में कुछ नहीं करता है। प्रकृति गुण सहित है। पुरुष गुणातीत है। प्रकृति के सङ्ग से पुरुष सभी प्राणियों में उत्पन्न होता है परन्तु शरीर में रहते हुये भी वह न कर्त्ता हैं न भोक्ता है। हमें यह सब पता होना चाहिये। जब हम कर्मयोगी बनते हैं तब हमें कार्य करते हुये भी अकर्त्ता बने रहना है। अकर्त्ता होने के कारण ही हम अलिप्त रह पाते हैं तथा हमें फल की चिन्ता नहीं रहती है। परमात्म तत्व भी इसी प्रकार से अकर्ता तथा अलिप्त है।

13.32

यथा सर्वगतं(म्) सौक्ष्म्याद्, आकाशं(न्) नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते॥13.32॥

जैसे सब जगह व्याप्त आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होने से (कहीं भी) लिप्त नहीं होता, ऐसे ही सब जगह परिपूर्ण आत्मा (किसी भी) देह में लिप्त नहीं होता।

विवेचन- जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण कहीं लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार देह में स्थित आत्मा भी सर्वत्र व्याप्त होने के कारण लिप्त नहीं होता है।

आकाश में मेघ होते हैं, बिजली कड़कती है, वर्षा होती है, होली पर्व पर हम रङ्ग उड़ाते हैं, दीपावली पर आतिशबाजी करते हैं, ये सारी घटनाएँ आकाश में होने के बाद भी आकाश किसी भी एक वस्तु से संलग्न नहीं होता है।

मेघ आते हैं वर्षा करके आकाश पुनः स्वच्छ हो जाता है। इसी प्रकार क्षेत्रज्ञ सभी कार्य करते हुये भी अलिप्त है, वह अकर्त्ता है।

13.33

यथा प्रकाशयत्येकः(ख्), कृत्स्नं(म्) लोकमिमं(म्) रविः।

क्षेत्रं(ङ्) क्षेत्री तथा कृत्स्नं(म्), प्रकाशयति भारत॥13.33॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन ! जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करता है, ऐसे ही क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।

विवेचन- हे भरतवंशी अर्जुन ! जिस प्रकार सारे संसार में प्रकाश देने वाला मात्र एक सूर्य ही है, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ सभी प्राणियों के प्रकाश के स्वरूप है। परमात्मा के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता है।

13.34

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवम्, अन्तरं(ञ्) ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं(ञ्) च, ये विदुर्यान्ति ते परम्॥13.34॥

इस प्रकार जो ज्ञानरूपी नेत्रों से क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विभाग को तथा कार्य-कारण सहित प्रकृति से स्वयं को अलग जानते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन- इस प्रकार ज्ञान स्वरूपी नेत्र से क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के अन्तर को तथा कार्य करण सहित प्रकृति से स्वयं को अलग जानते हैं वे परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

परमात्मा को जानने के लिये **ज्ञानचक्षु** की आवश्यकता है। श्रीभगवान् कहते है कि ज्ञानचक्षु के द्वारा जिसने क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के अन्तर को जान लिना उसने परमात्मा को प्राप्त कर लिया। ऐसे व्यक्ति मनुष्य जन्म प्राप्त करके धन्य हो जाते हैं।

श्रीभगवान् इस अध्याय में कहना चाहते हैं कि इस संसार में रहते हुये जिसने प्रकृति-पुरुष, जड़-चेतन, आत्म-अनात्म, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ को भिन्न-भिन्न करके देखने का कौशल प्राप्त करना चाहिए। ज्ञानचक्षुओं की सहायता से ही हम इस सत्य को जान सकते हैं।

हंस पक्षी दूध में से जल को पृथक करके मात्र दूध पी जाता है। यह उसकी कला है।

इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति भी क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के कार्यों को जानते हैं तथा परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं।

इसी प्रकार श्रीभगवान् हम सबको इसी जन्म में अथवा अगले किसी जन्म में ये ज्ञानचक्षु प्रदान करें इसी प्रार्थना के साथ आज के सत्र की पूर्णता हुई।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - श्रीमती रीता भारद्वाज दीदी
प्रश्न - इस अध्याय के अट्ठावीसवें श्लोक में आए **न हिनस्त्यात्मनात्मानं** शब्द का अर्थ स्पष्ट करें।
उत्तर - इसका अर्थ है क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को पहचानने के बाद स्वयं का नाश न करना, स्वयं को हानि नहीं पहुँचाना या आत्मघात नहीं करना।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती स्नेहलता देशपाण्डे दीदी
प्रश्न - सत्ताईसवें श्लोक के **विनश्यत्स्वविनश्यन्तं** इस पद का अर्थ बताएँ।
उत्तर - विनाशी और अविनाशी, क्षेत्र या देह विनाशी या नश्वर है, अशाश्वत है, जबकि क्षेत्रज्ञ या परमात्म तत्त्व अविनाशी, अनश्वर और शाश्वत है।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती शकुन्तला अग्रवाल दीदी
प्रश्न - कैसे अनुभव होगा कि ध्यान अच्छे से हो रहा है?

उत्तर - इसके लिए निरन्तर ध्यान में रहना पड़ता है, एक दो घण्टों का ध्यान पर्याप्त नहीं है। गौतम बुद्ध, आदि शंकराचार्य जी ध्यान योगी थे। सामान्य मनुष्य के लिए यह कठिन है क्योंकि हमारा ध्यान समयावधि में बँधा होता है।

प्रश्नकर्ता - श्री ईश्वर दत्त भैया
प्रश्न - आत्मा की परिभाषा क्या है? क्या उसका कोई प्रमाणपत्र होता है?
उत्तर - परमात्म तत्त्व एक ही है, उसका कोई प्रमाणपत्र नहीं होता, वह केवल अनुभूति मात्र है, उसे अनुभव किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती रुचिका परिहार दीदी
प्रश्न - अकर्त्ता का अर्थ स्पष्ट करें।
उत्तर - कोई भी कार्य करते हुए "मैं" का भाव न आना ही अकर्त्ता है। मैंने यह किया, मैंने दान दिया या मैंने किसी की सहायता की, ऐसा न सोचकर जो यह कहता है कि जो कुछ भी वह कर रहा है परमात्मा उससे करवा रहे हैं वह तो एक निमित्त मात्र है, वही अकर्त्ता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||